Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 3 | Issue 1 | (Jan – Mar 2026)

भक्ति आन्दोलन के दादू पन्थ में मुस्लिम संतों का योगदान: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

नीलम सेनिया
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजीव गांधी विश्वविद्यालय, दोईमुख, अरुणाचल प्रदेश-791112

शोध सार

भक्ति आंदोलन का भारतीय समाज को चिंतनशील बनाने में मुख्य भूमिका रही है। यह विषय उत्तर भारत की संत परंपरा को नई दृष्टि से मूल्यांकित करने का एक प्रयास है। हिन्दी संत परंपरा में दादू पंथ के मुस्लिम कवियों को जानने का प्रयास किया गया है। हिन्दी संत साहित्य में जायसी जैसे बड़े कवि को छोड़ दिया जाए तो अब तक मुस्लिम संतों पर ठीक से काम नहीं हुआ है। संत साहित्य में उनके योगदानों पर चर्चा अभी शेष है। इसी को केंद्र में रखकर यह लेख लिखा गया है, जिससे दादूपंथ और मुस्लिम संतों के कई आयाम सामने आएँगे। इस अध्ययन में दादूपंथी मुस्लिम संतों-विशेष रूप से रज्जब, बखना तथा वाजिंद-के साहित्य का गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया जाएगा, साथ ही हिन्दी संत साहित्य के विकास में इन संतों के योगदान भी रेखांकित किए जाएँगे।

बीज शब्द: संत, भक्ति आंदोलन, संत सुन्दरदास, निर्गुण, सगुण, भक्ति-भावना, सामाजिक समता, समरसता, अंधविश्वास, गुरु, नाम स्मरण।

मूल आलेख

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदिकाल के बाद भक्तिकाल आता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर वि.सं. 1375 से वि.सं. 1700 तक के कालखंड को भक्तिकाल का समय माना है। इस कालखंड में पूरे भारतवर्ष में भक्ति आंदोलन का अत्यधिक प्रचार-प्रसार हुआ। भक्तिकाल के उदय के संबंध में विद्वान एकमत नहीं हैं। विद्वानों की अपनी-अपनी स्थापनाएँ हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार भक्तिकाल के उदय का कारण इस्लाम का आक्रमण है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने इसे देश के भीतर की असंतुष्ट जनता की प्रतिक्रिया का परिणाम माना है। मुक्तिबोध ने इस आंदोलन को अवर्णों का सवर्णों के प्रति विद्रोह बताया है। उत्तर भारत में भक्ति के उदय के संबंध में उपरोक्त उक्ति बहुत ही प्रचलित है।

"भक्ति द्रविड़ ऊपजी लाए रामानन्द।
परगट किया कबीर ने सप्त दीप नवखंड ।।"[1]

यह सर्वमान्य तथ्य है कि भक्ति का बीज, जो उत्तर भारत में आते-आते विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेता है, उसका सूत्रपात तो दक्षिण से ही हुआ था। उत्तर भारत के सम्पूर्ण भक्ति आंदोलन पर आलवारों के प्रभाव साफ़ लक्षित होते हैं। आलवार दक्षिण के वैष्णव संत थे। इनकी संख्या 12 थी। बारह आलवारों के नाम उनके संस्कृत नामों के साथ इस प्रकार हैं- पोयेगे आलवार (सरोयोगी), भूत्ताल्वार (भूतयोगी), पेय आलवार (महत्योगी), तिरुमलिशै (भक्तसार), नम्मालवार (शठकोप), मधुर कवि (मधुरकवि), कुलशेखर आलवार (कुलशेखर), पेरियालवार (विष्णुचित्त), आण्डाल (गोदा), भक्तपदरेणु (विप्रनारायण), तिरुप्पन आलवार (योगवाह) तथा तिरुमंगै (परकाल)।

इन बारह आलवारों में सात ब्राह्मण, दो शूद्र, एक क्षत्रिय तथा एक अंत्यज जाति 'पनर' के थे। आण्डाल महिला थीं। भिन्न-भिन्न जातियों का एक साथ भक्ति के लिए जुड़ना तथा उसमें एक स्त्री को भी स्थान प्राप्त होना इस बात का स्पष्ट संकेत है कि आलवारों के यहाँ वर्ण अथवा लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं था। आलवारों का व्यापक प्रभाव उत्तर भारत के संतों पर पड़ा, हालाँकि इनकी भक्ति-पद्धति सगुण भक्ति के अधिक निकट प्रतीत होती है।

भक्तिकाल में भक्ति की दो धाराएँ-सगुण और निर्गुण-प्रवाहित हुईं। सगुण धारा के अंतर्गत राम और कृष्ण भक्ति शाखाएँ आती हैं, तो निर्गुण के अंतर्गत संतों तथा सूफियों का काव्य आता है। इस विविधता को रेखांकित करते हुए भक्ति आंदोलन को लेकर आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने ठीक ही कहा था कि "वे हिन्दू-मुसलमान के जातिगत भेदभाव को अनुचित मानते हैं। उन्होंने समान भाव से हिन्दू एवं मुसलमान दोनों को फटकार लगाई है। दादू स्वयं हिन्दू या मुसलमान होना नहीं चाहते थे, बल्कि निष्पक्ष भाव से सिर्फ राम कहना और रहिमन में अनुरक्त रहना अधिक पसंद करते थे।"[2]

रामभक्ति शाखा में तुलसी सबसे बड़े कवि माने जाते हैं, वहीं सूरदास कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। निर्गुण काव्यधारा का आधार निर्गुण ब्रह्म है। कबीर, धन्ना, पीपा, सेन, रैदास, दादू, रज्जब आदि इस धारा के बड़े संत हैं। निर्गुण धारा के अंतर्गत परम्परागत उपासना-पद्धति के बाह्य आडम्बरों का खण्डन कर उसके स्थान पर ज्ञान-तत्त्व को स्थापित करना तथा उसके माध्यम से जनसामान्य को परम-तत्त्व के अस्तित्व का अनुभव कराना और उन्हें सत्य तक ले जाना था। यह भक्ति आंदोलन का लक्ष्य था। उत्तर भारत की संत परंपरा में दादूपंथ ने अपनी मुख्य भूमिका निभाई थी। इनकी प्रगतिशील भूमिका को लेकर विद्वानों ने इसे इस प्रकार रेखांकित किया है। इस पंथ की भूमिका पर लिखते हुए कहा गया है कि- "संत दादू जी ने जाति-भेद और हिन्दू-मुसलमान के नाम पर समाज को बाँटने और इंसानियत को बदनाम करने वालों की कड़ी निंदा की है।"[3]

ये सारे कवि निर्गुण पंथ से सम्बन्ध रखते हैं। निर्गुण संप्रदाय में संतों पर महाराष्ट्र के संत नामदेव तथा नाथपंथी योगियों का प्रभाव पड़ा। उत्तर भारत में निर्गुण पंथ को संप्रदाय के रूप में व्यवस्थित करने का श्रेय कबीर को जाता है। निर्गुण धारा की प्रेममार्गी शाखा में जायसी सबसे बड़ा व्यक्तित्व हैं। निर्गुण संत सामाजिक रूढ़ीवाद और धार्मिक मिथ्या आडम्बरों का खुलकर विरोध करते हैं। संतों ने कट्टर धार्मिक कर्मकाण्ड, जाति-पाँति, छुआछूत आदि का खण्डन किया, साथ ही सांप्रदायिक सौहार्द से युक्त समाज के निर्माण के लिए रचनाएँ भी कीं। संतों ने हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात की और सांप्रदायिक सद्भाव का सन्देश दिया। यहाँ दादूपंथ का मुख्य योगदान रहा है। भारतीय समाज में इनका महत्त्व उल्लेखनीय है, जिस पर बहुत कम चर्चा हुई है।

इस पर नंदकिशोर पाण्डेय लिखते हैं कि "संत साहित्य के लेखन के अतिरिक्त उसके संरक्षण में दादूपंथ की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। संत साहित्य के बहुत बड़े हिस्से को दादूपंथियों ने संरक्षित किया। तत्कालीन समाज में सभी प्रकार के भेदभावों से परे जाकर उपासना के क्षेत्र में सभी के प्रवेश का द्वार खोला। परिणामस्वरूप राजघरानों से लेकर झोपड़ी में निवास करने वाले उनके शिष्य बने। बड़ी संख्या में मुस्लिम लोग दादूदयाल के शिष्य हुए, जिनमें रज्जब, बषना और बाजिंद प्रमुख हैं। सर्वंगी तथा पंचबानी जैसे ग्रंथों के संग्रह में दादूपंथियों ने किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया। भक्तमाल लिखकर बड़ी संख्या में रचनाकारों का काव्यात्मक परिचय देकर इतिहास की टूटी कड़ियों को जोड़ा।"

दादूपंथ का इतिहास गौरवशाली रहा है। जिस प्रकार की शिष्य-परंपरा यहाँ दिखाई देती है, वैसी कहीं और दिखाई नहीं देती। संतों की वाणियाँ तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में जितनी युग-सापेक्ष थीं, उतनी ही आज भी प्रासंगिक हैं। हिन्दी संत परम्परा में कबीर निर्विवाद रूप से सबसे बड़े संत कवि हैं। भक्ति आंदोलन की भूमिका को लेकर रामधारी सिंह दिनकर का मत महत्त्वपूर्ण है, जो इसकी प्रमुख बातों को रेखांकित करता है और बौद्ध, कबीर, जायसी से दादू को जोड़ते हुए इसकी प्रगतिशील भूमिका को स्पष्ट करता है। दिनकर जी लिखते हैं कि "बुद्ध के समय से भारत में संस्कृति की दो धाराएँ बहुत ही स्पष्ट रहीं। प्रथम वह, जो वर्णाश्रम धर्म को बनाए रखना चाहती थीं, और दूसरी वह, जो बुद्ध के कमण्डल से निकली थीं और बौद्ध आचार्यों से लेकर सरहपा, नहया आदि सिद्धों में पहुँचीं तथा कबीर, नानक, दादू दयाल एवं जायसी से होकर आधुनिक काल में स्वामी दयानन्द और महात्मा गांधी में प्रकट हुईं।"[5]

इस युग के चिंतकों में दादू का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। दिनकर जी भी बड़े आदर से उनका नाम लेते हैं। हिन्दी के संत संप्रदायों में दादूपंथ का विशिष्ट स्थान है। हिन्दी संत-परम्परा में सबसे अधिक पढ़े-लिखे साधु दादूपंथ में ही थे। 'दादूपंथ' की स्थापना स्वयं दादू ने की। दादूपंथ में मुसलमान एवं हिन्दू-दोनों धर्मों के संत एक रूप में जुड़े। शिष्यों की संख्या

की दृष्टि से पूरे उत्तर भारत की संत परम्परा में दादूपंथ सबसे बड़ा पंथ है। उनके जीवनकाल में ही उनके शिष्यों की संख्या 152 हो गई थी, जिसमें 100 वीतरागी थे तथा शेष 52 प्रसिद्ध शिष्य माने जाते हैं, जिनमें सुन्दरदास, गरीबदास, मस्किनदास, परमानन्ददास, रज्जब, जैमल, जगजीवन, बखना, वाजिद आदि प्रमुख हैं। दादूपंथ में विभिन्न जाति और धर्म के संतों ने शिष्यत्व ग्रहण किया। दादू के दयालु स्वभाव के कारण ऐसा संभव हो सका। दादू जितने हिन्दुओं में आदरणीय थे, उतने ही मुसलमानों में पूजनीय थे। जाति के बंधन से ऊपर उठकर लोग दादूपंथ से जुड़े। दादू की शिष्य-परम्परा में कई मुस्लिम शिष्यों ने शिष्यत्व ग्रहण किया, जिनमें रज्जब, बखना तथा बाजिद बड़े नाम हैं। दादूपंथ में संत रज्जब का नाम बहुत सम्मान के साथ लिया जाता है। इनका जन्म वि.सं. 1624 ई. के लगभग जयपुर के पास सांगानेर नामक स्थान पर एक प्रतिष्ठित पठान कुल में हुआ था।

दादूपंथ के मुस्लिम संतों ने इस युग में अपनी मुख्य भूमिका निभाई है। भक्ति आंदोलन में इन संतों का महत्वपूर्ण योगदान है। भारतीय समाज को इन्होंने कई आवश्यक मूल्यों से परिचित कराया। विद्वान इस भूमिका को रेखांकित करते हुए लिखते हैं कि “दादू जी के विचार तब से आज तक प्रासंगिक हैं, इसलिए कि वे जातिवाद और साम्प्रदायिकता जैसी घृणित व्यवस्था के खिलाफ थे। उनका काव्य इंसान के खिलाफ इंसान की हिकारत का मार्ग बंद करता है।”[6] इस युग के पढ़े-लिखे संतों में रज्जब की गणना होती है। उन्होंने स्वतंत्र रचनाएँ कीं, साथ ही अपने पूर्ववर्ती तथा समकालीन संतों की रचनाओं का संग्रह भी तैयार किया। ‘रज्जबवाणी’ तथा ‘सर्वंगी’ के नाम से उनकी दो कृतियाँ उपलब्ध हैं। दादूपंथ के मुस्लिम संतों में संत बखना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनका जन्म और मृत्यु नरैना में ही हुई थी। नरैना स्थित दादू द्वारा के पास जहाँगीर तालाब के पीछे आज भी इनकी समाधि विद्यमान है। संत दादू दयाल के बावन प्रधान शिष्यों में बखना की गणना होती है। हालाँकि इनकी बहुत कम रचनाएँ ही उपलब्ध हैं, परन्तु प्राप्त साहित्य के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि बखना पर कबीर तथा दादू का प्रभाव बहुत अधिक था। बखना बाह्य आडम्बरों एवं तीर्थ-व्रत के विरोधी थे।

दादू के अन्यतम मुस्लिम शिष्यों में वाजिंद का नाम आता है। हिन्दी संत साहित्य में ये आज भी अल्पख्यात हैं। संत साहित्य में वाजिंद अपने अरिल्लों के लिए प्रसिद्ध हैं। वाजिंद की रचनाओं की संख्या बहुत बताई जाती है, परन्तु बहुत कम रचनाएँ ही उपलब्ध हैं। संत रज्जब ने ‘जन’ शब्द को अपने नाम के साथ जोड़ा है। दादूवाणी भारतीय जनता को बहुत समय तक अपनी पंक्तियों के माध्यम से शिक्षित करती रही है, जिससे इसका महत्त्व स्पष्ट होता है। इसी संदर्भ में डॉ. बलदेव वंशी लिखते हैं कि “दादूवाणी अपने स्नेह, सहृदयता, दया, सरलता आदि गुणों के कारण संत साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान रखती है। दादूवाणी में आग नहीं, ऊर्जा है। ताप-उत्ताप नहीं, स्नेहिलता है, स्निग्धता है; हमदर्द, सुझावधर्मी, कंधे पर अपनेपन से हाथ धरकर बोलती हुई हितैषी, वरिष्ठता और साधुता है।”[7]

वास्तव में संत रज्जब को जनकवि ही कहा जाना चाहिए। इनके काव्य में समाज के प्रति चिंता का भाव है तथा इनकी वाणियों में जनहित की बातें सम्मिलित हैं और जनचेतना के गुणों की चर्चा हुई है। संत रज्जब ने अपनी वाणियों में हिन्दू-मुस्लिम एकता की आवश्यकता, अहिंसा के मार्ग को अपनाने तथा सात्विक जीवन जीने की प्रेरणा दी है। अपनी बात को जनता तक ठीक से पहुँचाने के लिए उन्होंने महापुरुषों की जीवन-शैली को ही उदाहरण बनाया-जैसे जंगलों में तप करते ऋषि-मुनि, औलिया तथा साधु-संत, जिन्होंने अपने जीवन जंगलों से फल खाकर व्यतीत किए। संत बखना जाति से मुस्लिम थे, किन्तु वे सांसारिक नियमों को पूरी तरह से विस्मृत कर चुके थे। यह पंथ भारत की समरसता और परंपरा के साथ आगे बढ़ता है, जिस कारण यह युग और यह पंथ महत्वपूर्ण बन जाता है।

विद्वान इसे इस प्रकार लिखते हैं कि “दादू जी की भाँति कबीरदास का भी यही मत है कि हिन्दू-मुसलमान दोनों एक हैं और उनमें कोई भेद नहीं है।”[8] दादू की शिष्य-परम्परा में रज्जब, बखना और बाजिंद-सभी ने अपनी वाणी के माध्यम से सांप्रदायिक सद्भाव का प्रचार किया है। संत बखना ने भी सदैव मध्यम मार्ग का अनुसरण किया। वे हिन्दू-मुस्लिम को अलग करने वालों का विरोध करते थे। बखनाजी का कहना है कि संसार के लोगों को अपना जीवन ‘राम’ की चेतना से भर लेना चाहिए। राम-नाम स्मरण करके बिताया हुआ समय ही सार्थक है, शेष को उन्होंने व्यर्थ कहा है। एक उदाहरण दृष्टव्य है-

जिसका साहिब तुरक न हिंदू, पबा दहूँ थे न्यारा।

बषना बन्दौं चौड़े धसि, जलै गडै संसारा।।[9]

यह देश प्रारम्भ से ही विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों एवं संस्कृतियों का मुख्य स्थल रहा है। उन सबका सम्मिलित स्वर ही भारत का स्वर रहा है। असंख्य जातियों के चिंतन, रिवाज, जीवन-दर्शन आदि मिलकर इस उद्यान की सौन्दर्य-वृद्धि करते हैं। हिन्दी साहित्य के विशाल फलक पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि इस साहित्य को समृद्ध एवं वैभवशाली बनाने में यहाँ की मूल जातियों के साथ-साथ मुसलमानों की भी अपनी सराहनीय भूमिका रही है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने मुसलमानों की साहित्य-सेवा को लक्ष्य कर कहा था "इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिक हिन्दू वारिए।"[10]

मुसलमान वास्तव में हिन्दू-मुसलमान आदि की जातिगत सीमाओं में बँधा साहित्य और भक्ति नहीं मानते थे। उनके उपदेशों में मूल रूप से अन्धविश्वासों, हिंसा, जाति-प्रथा, अवतारवाद आदि का खण्डन किया गया है। दादू के पदों में गुरु के महत्त्व, नाम-जप, अनुभव-ज्ञान, मनुष्य में समानता आदि पर ज़ोर दिया गया है। देखा जाए तो संतों की परम्परा का सूत्रपात विक्रम की सातवीं शताब्दी से ही हो गया था और पंद्रहवीं शताब्दी तक आते-आते संत परम्परा ने एक विराट रूप धारण कर लिया था। निर्गुण संत साहित्य में जितना योगदान अन्य संतों का है, उतना ही योगदान मुस्लिम संतों का भी है। भक्तिकालीन मुस्लिम संतों का विचार भी अन्य संतों के समान ही है। वे भी काम, लोभ, क्रोध, मोह, निन्दा एवं अंधकार जैसी प्रवृत्तियों को स्वीकार नहीं करते थे। उन्होंने भी स्वच्छ और शुद्ध समाज के निर्माण की कामना की। भक्ति आंदोलन के इस युग में दादूपंथ ने अपनी मुख्य भूमिका निभाई है और भारतीय समाज की समरसता को हमारे सामने रखा है। मुस्लिम संतों ने जिस प्रकार इस युग के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है, वह इसे और अधिक महत्त्वपूर्ण बनाता है। भारतीय समाज में इनकी भूमिका अत्यन्त उल्लेखनीय है।

निष्कर्ष

हिन्दी संत साहित्य में दादूपंथ अपने शिक्षित शिष्यों के कारण सभी संत सम्प्रदायों से अलग है। भारतीय संत परम्परा में शिष्यों तथा प्रशिष्यों की इतनी सुदृढ़ परम्परा अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। परिणामस्वरूप अलग-अलग धर्म, जाति और वर्ण के लोग दादूपंथ से जुड़े। दादूपंथ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र तथा मुसलमान-सभी वर्गों के शिष्य मौजूद थे। भारतीय समाज की समरसता के साथ ये संत आगे बढ़े और भारतीय समाज को समृद्ध किया। रचनाशीलता एवं संतत्व की दृष्टि से दादूपंथी मुस्लिम संतों में रज्जब, बखना तथा वाजिंद का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इन मुस्लिम संतों ने अपनी रचनाशीलता से न केवल दादूपंथ को, बल्कि सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य को भी उपकृत किया। हिन्दी साहित्य के इतिहास में इन मुस्लिम संतों का महत्त्व अनेक दृष्टियों से है। दादू का सम्पूर्ण साहित्य सामाजिक समरसता का साहित्य है। इन मुस्लिम संतों ने भी जाति, वर्ण और धर्म की संकीर्ण सीमाओं से ऊपर उठकर रचनाएँ कीं। भारतीय समाज में स्थिरता लाने तथा समाज को समरस बनाने में इन संतों ने प्रमुख भूमिका निभाई है। दादूपंथ के ये संत सम्पूर्ण मध्यकाल की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक पृष्ठभूमि को समझने में महत्त्वपूर्ण कड़ी सिद्ध होते हैं, जो इस साहित्य को और अधिक महत्वपूर्ण बनाती है।

संदर्भ सूची

1. भक्ति-आंदोलन और भक्ति-काव्य : शिवकुमार मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय आवृत्ति, 2015, पृष्ठ–30
2. पं० परशुराम चतुर्वेदी, उ० भा० की संत परम्परा, पृ० 421
3. दादू वाणी : स्वामी मंगलदास, आपा को अंग–12, साखी–137, पृ० 245
4. नवीन नन्दवाना, संत दादूदयाल : जीवन और साहित्य, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2018, पृष्ठ–57
5. दादू वाणी : स्वामी मंगलदास, आपा को अंग–12, साखी–137, पृ० 245

6. डा० केवल कृष्ण शर्मा, पूर्वोक्त, पृ० 222
7. बलदेव वंशी : दादू ग्रन्थावली, भूमिका
8. पं० परशुराम चतुर्वेदी, उ० भा० की संत परम्परा, पृ० 421
9. दादू पंथ : साहित्य और समाज-दर्शन : डॉ. ओकेन लेगो, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली–110032, पृष्ठ–110
10. हिंदी निर्गुण काव्य के मुस्लिम संत कवि : डॉ. महम्मद हारून 'शैलेन्द्र', अभिधा प्रकाशन, संस्करण–2010, पृष्ठ–157–195